'...पर पाज़ेब न भीगे' : बाजारी संस्कृति का सच्चा दस्तावेज

- अश्वती. सी.आर

शोध सार

समकालीन भारतीय परिवेश तमाम प्रकार की विसंगतियों से गुज़र रहा है। भूमंडलीकरण, उदारीकरण और पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत आम आदमी का अस्तित्व ही खतरे में पडा है। आज हर कहीं बाजारी संस्कृति जडें जमा चुकी है। इसके तहत उत्पन्न उपभोगवादी संस्कृति समस्त मानवीय गुणों का खातक बन रही है। अर्थ पर आधारित जीवन दृष्टि ने समाज से सारे आदर्शों को नष्ट कर दिया है तथा आदमी संवेदनहीन, संदेहभरी जीवन जीने को अभिशप्त हो रहा है। साहित्य का विकास तत्कालीन परिवेश से प्रेरणा पाकर ही होता है। समकालीन साहित्य भी अपनी परिस्थितियों की उपज है। समकालीनता की अवधारण का सीधा संबंध समय के साथ के बोध से होता है। वर्तमान की जटिलताओं के प्रति जागरूक रहना तथा उससे प्रतिक्रिया व्यक्त करना समकालीन होना है। इसी वजह से समकालीन साहित्य विद्रोही बनता है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय परिवेश जिन नवीन परिवर्तनों का सामना कर रहा है, जिन जटिलताओं से आम आदमी गुजर रहा है, समकालीन हिंदी साहित्य में उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति मिलती है। समकालीन हिंदी साहित्य समाज में समय-समय पर आनेवाली नवीन चुनौतियों के प्रति जागृत रहता है तथा सदियों से उत्पीडित दलित-दमित जनता के विद्रोह को वाणी देती है। इस प्रवृत्ति ने वर्तमान साहित्यिक क्षेत्र में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श जैसे कई नवीन विमर्शों को जन्म दिया है।कहानी आधुनिक युग की सबसे लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। आज के भाग-दौड़ भरी ज़िन्दगी ने ही मनुष्य की रुचि इसकी ओर बढायी है। सरल और संक्षिप्त ढंग से ज़िन्दगी की गंभीर समस्यओं को उकेरने की ताकत ही इसको लोकप्रिय बनाता है। सत्यनारायण पटेल वर्तमान समय के मशहूर रचनाकार है। अपनी कहानियों के तहत, वह भूमंडलीकृत भारतीय परिवेश का सही पहचान कराना चाहते है। बाजारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने हमारी पुरानी मान्यताओं में बहुत सारे परिवर्तन ला रहे है। नव उपनिवेशी ताकतों ने हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी कब्ज़ा जमा रही है। औद्योगीकरण, सूचना क्रांति तथा तकनीकी विकासों ने हमारी लोक-परंपराओं, सांस्कृतिक विश्वासों और मूल्यों को नष्ट कर दिया है। लोक में प्रचलित किस्से को कहानी के रूप देकर लेखक पुराने तथा नए युग की बदलती अवधारणाओं, जीवन एवं मूल्य दृष्टि को प्रस्तुत करते है।

बीज शब्द : भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाजारीकरण, परिवेश, लोक संस्कृति

वर्तमान समय की समस्यओं और जटिलताओं को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाले अनेक कहानी संग्रहों का प्रकाशन समकालीन समय में हुआ है। भूमंडलीकरण और बाजारीकरण की तेजी से बदलते इस नए दौर में समाज में प्रतिदिन अनेक विकृतियाँ पैदा होती जा रही है। यह मात्र आर्थिक क्षेत्र तक सीमित न रहकर सामजिक,

सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में खतरे उत्पन्न करने लगे है। इन युगीन समस्यओं को अपनी रचनाओं द्वारा अभिव्यक्त करने में समकालीन कहानीकार सक्षम रहे है। सत्यनारायण पटेल भी उन्हीं में से एक है। 'काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस' में कुल छह कहानियां शामिल है। प्रत्येक कहानी लेखक के परिवेशगत समझ का परिचायक है। लोककथात्मक शैली में लिखी गयी ये कहानियां सरल और सहज भाषा में समकालीन समय को अभिव्यक्त करती है। '...पर पाज़ेब न भीगे' कहानी में लेखक एक पुरानी किस्से के माध्यम से बाजारीकरण के इस युग में बदलते बाज़ार संबंधी मान्यताएं, जीवन तथा मूल्य दृष्टि को प्रस्तुत करता है। 'ठग' कहानी भी बाजारीकरण के युग के व्यापारियों के कपटी चरित्र को अनावरण करती है। 'घट्टी वाली माई की पुलिया' शासनतंत्र के खोखलेपन को प्रस्तुत करते हुए सामजिक हित केलिए जनता के परिश्रम के महत्व को दिखने का प्रयास है। औद्योगीकरण और शहरीकरण के इस युग में गाँव से शहर की ओर पलायन करने वालों की संख्या काफी मात्रा में बढ़ी है। 'एक था चिका एक थी चिकी' कहानी में भी एक पुरानी किस्से के माध्यम से विस्थापितों की मानसिक पीड़ा को एक स्त्री वादी नज़रिए से देखने का प्रयास हुआ है। 'न्याय' कहानी के माध्यम से लेखक मौजूदा न्याय व्यवस्था पर प्रहार करता है। व्यवस्था के सेवक बनती रही न्याय व्यवस्था के भीतर के आम आदमी के हालत को कहानी में वाणी मिली है। संग्रह की अंतिम और शीर्षक कहानी 'काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस' धार्मिक क्षेत्र से जुडी हुई कहानी है। धर्म संबंधी आधे-अधूरे समझ, धार्मिक मान्यताओं का अँधा अनुकरण से समाज में उत्पन्न खतरे को अंकित करने के साथ-साथ, कॉरपरेट देशों, पूंजीपति वर्गों द्वारा अपने हितों के संरक्षण के तहत धर्म को किस तरह उपयोग कर रहे है, इसका भी सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है। भूमंडलीकरण, बाजारीकरण के बदलते परिवेश तथा सूचना क्रांति का प्रसार अपने परंपराओं, मूल्यों, संवेदनाओं, संस्कृतियों से मनुष्य को अलग कर रहा है। यहाँ लोक में फैले हुए किस्से-कहानियों के माध्यम से महानगरीय सभ्यता में अपने-आप से भी अलग होते जा रहे मनुष्य को जीवन रस से जोड़ने का प्रयास किया गया है। लोक कथा के रस में पिरोयी गयी कहानियों के माध्यम से सत्यनारायण पटेल ने समकालीन जीवन सन्दर्भों को रचनात्मक रूप दिया है। समकालीन समय में भारत के आर्थिक क्षेत्र में बाजारीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की जो नीतियां चालू हुई उसने मानव जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। इससे मनुष्य की जीवन दृष्टि ही बदलने लगी है। अर्थ पर आधारित मूल्य दृष्टि आदमी से उसकी मानवीयता और संवेदनाओं को नष्ट करने लगी है। सत्यनारायण पटेल की कहानी '...पर पाजेब न भीगे' समकालीन मनुष्य को उसके पुराने समय से जोडती है। प्राचीन समय के बाजार, उससे जुड़े हुए लोग, समाज की जीवन दृष्टि, संवेदनाएं आदि का चित्रण कर लेखक मानव को उसकी निजी संस्कृति से परिचय कराते है।

बाजार की बदलती अवधारणाएं

बाजार का इतिहास बहुत पुराना है। पुराने समय के बाजार तथा आज के बाजार संबंधी मान्यताओं में काफी बदलाव आया है। बाजार मात्र चीज़ों की बिक्री का स्थान न रहकर संस्कृति के आदान-प्रदान का क्षेत्र भी रहा है।

अत: बाजार में आने वाले परिवर्तनों का प्रभाव पूरे समाज पर भी पड़ना स्वाभाविक है। '...पर पाज़ेब न भीगे' कहानी में एक पुरानी किस्से के माध्यम से लेखक ने पुराने बाजार संबंधी मान्यताओं, जनता की जीवन दृष्टि तथा सामजिक सरोकार को दिखाने का प्रयास किया है। साथ ही साथ वे इस में उपभोक्तावादी संस्कृति के तहत नष्ट होती आत्मीयता, संवेदनशीलाता का सही पहचान कराते है।

एक जमाना था जहाँ बाजार सबसे ईमानदार जगह होता था। हमारे उस पुराने बाज़ार के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए सत्यनारायण पटेल लिखता है- "तब भी एक देश से दुसरे देश में काम-धंधा करने जाते थे लोग। किसी को पास्पोर्ट, वीजा, अनुमति आदि की जरूरत नहीं होती थी। होती थी जरूरत तो बस इतनी की आता हो काम धंधा। व्यापर-व्यवसाय करने की हो इच्छा। जहाँ जाते वहां की बोली-भाषा भी सीख ही लेते, ताकि काम धंधा करना आसान हो सके। लोग ऐसे ही करते थे व्यापर-व्यवसाय। बड़े-बड़े हाट भरते| कई-कई दिन चलते मेले। हाट और मेलों में अलग-अलग जगहों की संस्कृति, बोली घुलती-मिलती। लोगों में दोस्ती प्रेम और कई तरह के संबंध विकसित होते। अभी भी होता है वही सब...लेकिन स्वरुप बदल गया है।"[1] बाजारीकरण के इस युग में भी व्यापार-व्यवसाय खूब चलते है, लेकिन लाभ केन्द्रित अर्थ व्यवस्था में इसका स्वरुप ही बदल गया है। आज संस्कार और भाषा का आदान-प्रदान के स्थान पर नव-उपनिवेशी ताकतों तथा मल्टीनेशनल कंपनियों द्वारा अपनी चीजों की बिक्री आसन बनाने केलिए हम पर थोपने वाली संस्कृति का ही विकास होता जा रहा है। इस उपभोगवादी संस्कृति के भीतर हमारे संस्कृति, इतिहास, भाषा-बोली, प्रकृति, मानवीयता तक को बचाके रहना मुश्किल बनता जा रहा है। जैसे सत्यनारायण जी अपनी कहानी में लिखते है- "गाँव कस्बों में और कस्बे शहरों में और शहरों का...शायद जंगल में बदलना जारी रहा।"[2] तेजी से बदलती आज की दुनिया में सारी की सारी पुरानी मान्यताएं नष्ट होने लगी है और सब का अस्तित्व खतरे में पड़ने लगा है। बाजारीकरण और उदारीकरण के अंतर्गत हमारे देशीय व्यवसायों का अंत होने लगा है और उसी जगह अनेक बड़े-बड़े दूकानों और मॉलों का उदय होने लगा है। बेचने और खरीदने वालों के बीच के संबंध भी समाप्त होने लगा है। व्यवसाय करने का एकमात्र मकसद ज्यदा से ज्यादा मुनाफा कमाना रह गया है। व्यवसाय के क्षेत्र से आदर्श और मूल्यों की अवधारणायें धीरे-धीरे पीछे हटने लगी है।

बदलती मूल्य दृष्टि और मानवीय संबंधों में आए परिवर्तन

इस भूमंडलीकृत परिवेश में सत्यनारायण पटेल अपनी इस कहानी के जरिये एक ऐसे बंजारे की किस्सा बताता है जो नमक के दाम ज्यादा लेने की वजह से बदनाम हो जाती है। दाम ज्यादा लेना उसकी मजबूरी है, ताकि नदी पर बांध न होने के कारण नदी पार कर सामान लाते वक्त ज्यादा से ज्यादा नमक नदी में गल जाता है। अत:

बचे हुए नमक को महंगे दाम पर बेचने को विवश रहा है। बंजारे के पास अच्छा घर, पैसा-कौडी होने पर भी कोई माता-पिता अपनी बेटी को बंजारे के साथ शादी कर देने को तैयार नहीं है। "क्योंकि लोग पैसा-कौडी से ज्यादा ईमान और इंसानियत को तवज्जो देते थे तब।"[3] वर्तमान युग की बदलती परिस्थितियों में अगर कोई चीज का कम दाम है तो वे है ईमानदारी और इंसानियत। आज ज्यादातर माता-पिता, पैसा कौडी को ही महत्व देते है, चाहे वह किसी को लूटकर या मारकर कमाया क्यों न हो, उससे किसी का भी कोई फर्क नहीं पड़ता। यहाँ सत्यनारायण पटेल ने इस अर्थ केन्द्रित जीवन दृष्टी के तहत उत्पन्न मूल्य ह्रास को रेखांकित किया है।समकालीन समय में व्यक्ति समाज के व्यापक परिवेश से हटकर अपने-आप में सीमित हो जाता है। उपभोगवादी संस्कृति के शिकार बनते जा रहे आधुनिक मनुष्य किसी से भी संबंध मात्र अपनी उपयोगिता के अनुरूप जोड़ना चाहता है। इसके परिणामस्वरूप मानवीय संबंधों में बदलाव आने लगा है। संवेदनहीन, संदेहभरी जीवन जीनेवाले मनुष्य प्रेम जैसी भावनाओं में से भी अलग होने लगा है। लेखक ने यहाँ एक मार्मिक प्रेम कहानी के माध्यम से आदिम मनुष्य के सामाजिक सरोकार और संबंधों की तीव्रता को अभिव्यक्ति दी है। बंजारन द्ववारा शादी केलिए रखे शर्त यही सामाजिक सरोकार का उदाहारण है। बंजारन से वह एक बांध बनवाने का शर्त रखता है। वह बांध तो बना ही देते है- "वह बांध बनवाने का काम सिर्फ मजदूरों से नहीं करवाता था, बल्कि खुद मजदूरों के साथ मिलकर करता था।"[4] आज अपनी प्रेमी केलिए बांध बनवाने वाले बंजारे नहीं होते है और ना ही ऐसी बंजारन भी होती है जो सामाजिक उपयोगिता को लक्ष्य में रखकर इसी एक शर्त लगाती है। वह बांध मात्र मिट्टी और पत्थर से नहीं बंजारे के आत्मीयता और लगन के साथ बनता है। आधुनिक मनुष्य से यही आत्मीयता और लगन नष्ट होती जा रही है।

प्रकृति संरक्षण की चाह

भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, लाभ पर आधारित अर्थ-व्यवस्था के नीचे पूरे देश पिस रहा है। अतिक्रमण मात्र मनुष्य पर नहीं प्रकृति तथा जीवजंतुओं के ऊपर भी खूब चलता रहता है। विकास के नाम पर प्रकृति पर होने वाले अतिक्रमणों की संख्या आज बढ़ी है। '...पर पाजेब न भीगे' कहानी के माध्यम से लेखक प्रकृति के साथ पुराने तथा आधुनिक मानव के व्यवहार को स्पष्ट करता है। बंजारन द्वारा मात्र एक बांध बनवाने का शर्त नहीं बल्कि- "शर्त यह है की तुम्हें उस नदी पर एक बांध बनवाना होगा। बांध ऐसा बने की पैरों की पगथली तो भीगे पर पाजेब नहीं भीगे। अगर तुम मेरा यह शर्त पूरा करोगे तो मैं ख़ुशी-ख़ुशी तुम्हारे गाँव चलूंगी। तुमसे शादी कर लूंगी, और अगर बांध पार करते वक्त पाजेब भीग गयी...तो जहाँ भीगेगी...उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाउंगी...वापस अपने मायके लौट आउंगी...तुम्हें शर्त मंजूर हो तो बोलो, वर्ना जो कुछ अपने बीच हुआ, उसे भूल

जाओ।"[5] यहाँ बंजारन का उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार एक बांध बनवाना नहीं; बल्कि एक ऐसा बांध जिस पर चलके पैरों की पगथली तो भीगना है, पर पाजेब नहीं। विकास के नाम पर प्रकृति के ऊपर होने वाले अतिक्रमों की ओर ही यहाँ इशारा करते है। बांध तो बनवाना है, विकास भी होना है लेकिन प्रकृति या जीव-जंतुओं पर किसी भी प्रकार के खतरा न पहुंचाकर। बांध तो आज भी खूब बनते-बिगड़ते है, लेकिन उसे बड़े-बड़े कंपनियों या इंजिनीयरों द्वरा बनाया जाता है, जिसमें पूरे देश का अस्तित्व ही संकट में पड जाते है। जैसे लेखक कहानी के दौरान बताते है - "बांध तो दुनिया भर की नदियों पर अब भी खूब बन रहे है, पर उन्हें प्रेमी बंजारे नहीं, कंपनियां बना रही है। अब पाजेब और उसकी को घूंघरी को भीगने की बात छोडो, घर-खेत और गाँव तक बचाना मुश्किल हो रहा। वाकई समय बदल रहा। विकास की गंगा बह रही दिन-रत। डूब रहा सुख-चैन।"[6] यही आज की विकास योजनाओं का परिणाम है। 'काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस' कहानी संग्रह की प्रत्येक कहानी भूमंडलीकृत परिवेश के जरूरी सवालों से टकराती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भोगवादी सोच के अनुरूप बह रहे विकास की गंगा में हमारी खेत, खलिहान, नदी जंगल सब कुछ बह गये है। एक जमाने में बंजारन की पाजेब की घूँघरू के स्वर में गुनगुनाती नदियों में आज संगीत नहीं भयावह चीखें है। संवेदनाओं से अलग होकर मशीन बनते जा रहे मनुष्य के बीच आज ऐसे बंजारा को ढूंटना कठिन है जो अपनी प्रेमी केलिए बांध बनवा सके।

संदर्भ सूची

1. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस, पृ ९
2. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस, पृ १०
3. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजुका उर्फ़ इब्लीस, पृ ११
4. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस, पृ १४
5. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस, पृ १३
6. सत्यनारायण पटेल, काफ़िर बिजूका उर्फ़ इब्लीस, पृ १७

अश्वती. सी.आर

शोधार्थी, एस.एस,यु.एस, कालड़ी, केरल

ईमेलः aswathy.cr800@gmail.com फोन नं. 9496602991